सुभाषित-रत्नमाला

(वैदिक संस्कृत साहित्य के ३०० सुभाषितों का संग्रह)

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ।।

कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

द्वितीय संस्करण

अशोक प्रकाशन मन्दिर
शक्तिनगर दिल्ली—६

प्रकाशक—

अशोक प्रकाशन मन्दिर,

२८/११ शक्तिनगर, दिल्ली—६

मूल्य १-१५ रु०

मुद्रक—

मूवीज़ प्रेस,

चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ ।

चिरंजीव कुमारी इन्दुप्रभा को,
जिसे सुभाषित रत्नों के कण्ठस्थ कराने
की भावना से यह संग्रह करने
की प्रेरणा मिली

दो शब्द

वैदिक और लौकिक संस्कृत साहित्य अमूल्य रत्नों का अक्षय भण्डार है। जीवन की सफलता के सनातन सत्यों और शिक्षाओं का समावेश इस साहित्य में बहुत सुन्दरता व कुशलता से किया गया है। भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से वे अमूल्य हैं। वस्तुत: वे मानव जीवन के सहस्रों वर्षों के अनुभवों का सार हैं। प्राचीन काल की भांति आज भी वे जीवन-निर्माण में सहायक हो सकते हैं।

विदेशी शासन में अंग्रेजी के प्रसार व संस्कृत की घोर उपेक्षा के कारण हम संस्कृत साहित्य के अमूल्य रत्नों को सर्वथा भूल गये हैं। आज से कुछ समय पूर्व, जब मैंने चिरंजीव कुमारी इन्दु प्रभा को इन उपयोगी रत्नों के कण्ठस्थ करने का परामर्श दिया, तो यह देखकर मुझे दु:ख हुआ कि ऐसे बालोपयोगी संग्रह बाजार में सुलभ नहीं हैं। आर्यसमाज के विद्वानों ने वेद-मंत्रों के तो कुछ संग्रह प्रकाशित किये हैं, किन्तु उनका उद्देश्य गंभीर स्वाध्याय है। बालकों को तो ऐसे सुभाषित चाहिए, जो भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से सुबोध हों, जिन्हें संस्कृत का अत्यन्त साधारण ज्ञान रखने वाला भी समझ सके। इसी दृष्टि से यह छोटा-सा संग्रह प्रस्तुत किया गया हैं।

मुझे विश्वास है कि वेदों तथा अन्य ग्रंथों के यह सुभाषित रत्न विद्यार्थियों के जीवन निर्माण के लिए लाभकारी सिद्ध होंगे, उनका ज्ञानवर्धन करेंगे तथा विभिन्न विषयों पर भाषण देने व निबन्ध लिखने की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होंगे। विषयक्रम से मंत्र और श्लोक देने का यही अभिप्राय है।

चारों वेदों तथा अन्य संस्कृत ग्रंथों से चुनाव करने में इसलिए कठिनता विशेष रूप से अनुभव हुई कि प्राचीन संस्कृत-रत्न भण्डार में कौन से अमूल्य रत्न लिये जावें और कौन से छोड़े जावें। पुस्तक को कम मूल्य में विद्यार्थी ले सकें, इस मर्यादा में रहना था। भाषा व भाव की सरलता और उपयोगिता का भी ख्याल चुनाव में रखा गया है।

जन्माष्टमी २००८ वि.। **कृष्णचन्द्र विद्यालंकार**

द्वितीय संस्करण की भूमिका

प्रथम संस्करण बहुत लोकप्रिय हुआ और शीघ्र समाप्त हो गया। पर अनेक अनिवार्य कारणों से दीर्घकाल तक इच्छा होते हुए भी दूसरा संस्करण प्रकाशित नहीं हो सका। अब नया संस्करण अनेक परिवर्तनों व संशोधन के साथ प्रकाशित हो रहा है। अनेक मंत्र व श्लोक जहाँ अपने-अपने विषय के अन्तर्गत बढ़ाये गये हैं, वहाँ व्यवहारनीति प्रकरण सर्वथा नया है। इन श्लोकों में दैनिक व्यवहार के लिए अनेक उपयोगी निर्देश मिलते हैं।

जन्माष्टमी २०१७ वि०। **कृष्णचन्द्र विद्यालंकार**

विषय सूची

वैदिक साहित्य

विषय	पृष्ठ
१-ईश स्तुति ...	६
२-ईश प्रार्थना ...	१२
३-ईश्वर के उपदेश ...	१६
४-पाप निवारण ...	२२
५-मेरी मातृभूमि ...	२३
६-ब्रह्मचर्य	२४
७-मधुर स्वभाव ...	२५
८-श्रद्धा भक्ति ...	२६
९-निर्भीकता ...	२७
१०-संगठन में बल है ...	२८
११-विविध वैदिक सूक्तियाँ	३०
१२-चलते रहो ...	३३

संस्कृत साहित्य

विषय	पृष्ठ
३-गीता के रत्न ...	३४
४-धर्म गौरव ...	३८
५-महान् पुरुषों की विभूतियाँ	४१
६-विद्या महिमा ...	४८
७-सत्संगति ...	५४
८-सत्य महिमा ...	५६
९-क्रोध निन्दा ...	५७
०-मधुर वाणी ...	५८
२१-सन्तोष	५८
२२-तृष्णा	६०
२३-उद्योग	६०
२४-दान महिमा ...	६२
२५-विविध सुभाषित ...	६३
२६-धर्मराज युधिष्ठिर की शिक्षा	७०
२७-व्यवहार नीति ..	७१
२८-विविध लोकोक्तियाँ ...	७७
२९-दो राष्ट्रगीत ...	८०

वैदिक समाज का राष्ट्र-गीत

ओ३म् आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे
राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधी महारथो जायताम् ।
दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् । निकामे निकामे
नः पर्जन्यो वर्षतु । फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ।
योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।

ईश-स्तुति

ओ३म् नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥१॥ अ० ११-२-१६॥

मंगलमय भगवान को हम प्रातः, सायं और रात्रि को नमस्कार करते हैं। संसार के उत्पादक और संहारक ईश्वर के दोनों रूपों को हम नमस्कार करते हैं।

ओ३म् नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते भगवन् अस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ २ ॥ अ० १-१३-१॥

विद्युत् के समान तेजस्वी परत्मामा को नमस्कार हो। मेघ के समान गर्जन करने वाले तुझे नमस्कार हो। हे भगवान, तुझे नमस्कार हो, क्योंकि तू ही समस्त प्राणियों को सुख देता है।

ओ३म् यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठायब्रह्मणे नमः ॥३॥ अ० १०-८-१॥

जो अतीत, भविष्य तथा वर्तमान का अधिष्ठाता है और जो केवल सुखस्वरूप है, उस महान् ब्रह्म को नमस्कार हो।

ओ३म् यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ४ ॥
अ० १०-७-३२॥

भूमि जिस के पैर हैं, अन्तरिक्ष उदर है, जिस ने द्युलोक को अपना सिर बनाया है, उस महान् ब्रह्म को नमस्कार है।

ओ३म् यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ५ ॥

अ० १०-७-३३॥

सूर्य और फिर फिर उदय होने वाला चन्द्र जिस की आँखें हैं, अग्नि को जिसने अपना मुख बनाया है, उस महान् ब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं ।

ओ३म् तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ६ ॥ यजु० ४०-५॥

वह परमात्मा सबको चलाता है, परन्तु स्वय नहीं चलता । वह दूर है, वह निश्चय से सबके समीप है । वह इस सब विश्व के अन्दर है, वह इस सबसे बाहर भी है ।

ओ३म् तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः सः प्रजापतिः ॥ ७ ॥ यजु० ३२-१॥

अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः और प्रजापति सब उसी परमात्मा के नाम हैं ।

ओ३म् यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥

ऋ० १०-१२१-४॥

ये बड़े-बड़े महिमाशाली हिम वाले पर्वत और पानी वाले बड़े-बड़े समुद्र जिसका वर्णन करते हैं और ये चारों बड़ी दिशाएं जिसकी बाहु रूप हैं, उस विश्व के स्वामी देव की हम पूजा करते हैं ।

ओ३म् यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ९ ॥

ऋ०१०-१२१-६॥

प्राणियों की रक्षा के लिये स्थिर द्यौ व पृथ्वी जिसकी ओर कांपते

हुए देखते हैं, जिसके आधीन होकर सूर्य उदय होता हुआ चमकता है, उस देव की हम पूजा करते हैं।

ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ।। १० ।। **अ० २०-१०८-२।।**

हे परमेश्वर, तुम निश्चय से हमारे पिता हो। हे असंख्य ज्ञान और कर्मों वाले, तुम ही हमारी माता हो। अतः हम तुम से शान्ति की प्रार्थना करते हैं।

ओ३म् परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश ।। ११ ।।
यजु० ३२-११।।

वह सर्वव्यापक परमात्मा पाँचों भूतों, सब लोकों और सब दिशाओं और प्रदिशाओं में व्याप्त है। मनुष्य भगवान् की वेद वाणी का मनन कर अपने आत्मा से उस परमात्मा में प्रवेश करता अथवा उसकी उपासना में मग्न हो जाता है।

ओ३म् सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।। १२ ।। यजु० ३१-१

सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् होने के कारण मानो परमात्मा के हजारों सिर हैं, हजारों आँखें हैं, हजारों पैर हैं। वह पृथ्वी को सब ओर से व्याप कर प्राणियों के हृदय में विराजमान है।

ओ३म् विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ।।१३।। **ऋ० १-२२-१६।।**

हे मनुष्यो ! सर्वव्यापक ईश्वर के सृष्टि रचना आदि कार्यों को देखो, जिससे सब व्रतों का पालन कर सको। वही भगवान् ही आत्मा सच्चा सखा है।

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।। १४ ।। **यजु० १६ । ४१ ।।**

कल्याण और सुख के स्रोत कल्याणकारी सुख देने वाले, महान कल्याणस्वरूप भगवान को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

ओ३म् वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।। १५ ।।
यजु० ३१-१८ ।।

महान् आदित्य को भी प्रकाश देने वाले व अन्धकार से भी परे उस पूर्ण परमात्मा को मैं जानता हूँ। उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु को जीत जाता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

ओ३म् स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्र नो अस्तु
ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ।। १६ ।। अ० १-३१-८ ।।

हमारे माता, पिता, गौ आदि जगत के सब प्राणी और पुरुषों का कल्याण हो। हमारे लिये सब वस्तुएँ कल्याणकारक और सुगमता से प्राप्त होने योग्य हों। हम दीर्घकाल तक सूर्य और सर्वप्रकाशक भगवान् के दर्शन करते रहें।

ईश-प्रार्थना

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ।। १७ ।। **अ० ५-८२-५ ।।**

हे परमात्मा, आप हमारे दुर्गुणों को हर लीजिए और अच्छे गुण हमें दीजिए।

ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। १८ ।।
ऋ० १०-१२१-१ ।।

सूर्य चन्द्र आदि सब लोकों का उत्पादक इस सृष्टि से पहले भी विद्यमान था। वही इस पृथ्वी और द्युलोक को धारण कर रहा है। हम लोग उसी सुखस्वरूप ईश्वर की पूजा करें।

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। १६ ।।
ऋ० १०-१२१-२ ।।

जो भगवान् आत्मिक और शारीरिक बल को देने वाला है, जिसकी सब देव प्रार्थना करते हैं, जिसकी शिक्षा सब स्वीकार करते हैं, जिसका आश्रय अमृत है और जिसे न मानना मृत्यु है, हम उसी सुख-स्वरूप परमेश्वर की पूजा करें।

ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वै क इद्राजा जगतो बभव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्म देवाय हविषा विधेम ।।२०।।
ऋ० १०-१२१-३।।

जो चेतन और इस जगत् का एकमात्र स्वामी है और जिसने इस विश्व के द्विपद मनुष्य, तथा चतुष्पद पशुओं की रचना की है, उसी सुखस्वरूप परमेश्वर की हम पूजा करते हैं।

ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथ्वी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।२१।।
ऋ० १०-१२१-५।।

जिस परमात्मा ने तेजसम्पन्न सूर्यादि लोकों और इस पृथ्वी को धारण किया है, जो सुखों को देने वाला है, जो आकाश में नक्षत्रों की रचना करता व उन्हें भ्रमण कराता है, उसी सुखस्वरूप परमात्मा की हम पूजा करें।

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२२॥

ऋ० १०-१२१-१०॥

हे प्रजापते, आपके समान और कोई शक्तिशाली नहीं है, न इन सब लोकों में व्याप्त है। जिस पदार्थ की कामना करते हुए हम परिश्रम करें, वह पूर्ण हो और हम ऐश्वर्य के स्वामी बनें।

ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥२३॥

यजु० ३२-१०॥

वह परमात्मा हम सब का बन्धु है, सकल लोकों का उत्पादक है, और उन्हें जानने वाला है। उस अमर परमात्मा में देव मोक्ष प्राप्त करके विचरते हैं।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥२४॥

ऋ० १-१८९-१॥

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए हमें धर्मयुक्त मार्ग पर चलाओ। आप हमारे सब कर्मों को जानते हो। हमें पाप कर्मों से दूर रखो। हम सब आपकी स्तुति किया करें।

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२५॥

यजु० १४-१॥

हे ईश्वर, दिव्यशक्ति वाला मेरा मन जो जागते हुए दूर भाग जाता है और सोते हुए लौट आता है, वह दूरगामी अद्वितीय ज्योति वाला मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२६॥

यजु० ३४-२॥

जिस मन से कर्मशील बुद्धिमान् यज्ञ में तथा धीर लोग युद्धों तथा राजसभाओं में कर्म करते हैं, और जो मन सब प्राणियों में पूज्य वस्तु है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

ओ३म् यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२७॥

यजु० ३४-३॥

जो ज्ञान और स्मृति का साधन धैर्यरूप है, जो सब प्राणियों के भीतर एक अमर ज्योति है, जिसके बिना कोई कर्म नहीं किया जाता, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२८॥

यजु० ३४-४॥

जिस अमर ज्योति के द्वारा यह सब भूत, भविष्यत् और वर्तमान जगत्, जाना जाता है, दो आँख, दो कान, दो नासिका और एक जिह्वा—इन सात इन्द्रियों वाले शरीर यज्ञ को जो मन पूरा करता है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

ओ३म् यस्मिन्नृचः साम यजू ँ षि
यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।

यस्मिंश्चित्त ँ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२९॥

यजु० ३४-५॥

जिस मन में सब ऋचाएँ, साम, यजुर्वेद के सब मन्त्र, रथ की

नाभि में अरों की तरह ठहरे हुए हैं, जिसमें प्राणियों का सब ज्ञान ओतप्रोत है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

ओ३म् सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३०॥

यजु० ३४-६॥

जैसे अच्छा सारथि घोड़ों को ले जाता है, तथा लगाम द्वारा वश में रखता है, उसी तरह जो मन सब मनुष्यों को ले जाता है या वश में रखता है, जो मन हृदय में स्थित है, कभी बूढ़ा नहीं होता, जो बहुत वेगवान् है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजो ऽ स्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहो ऽ सि सहो मयि धेहि ॥३१॥

यजु० १९-९॥

हे प्रभु आप तेजस्वी हैं, हमें तेज दें; शक्तिमान् है, हमें शक्ति दें; बल और ओज दें। आप पाप के प्रति उग्र हैं, हमें पाप के प्रति उग्रता दें और हे सहनशील परमात्मा, हमें सहनशीलता की शक्ति दें।

ओ३म् तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि।
आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि॥
वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि।
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥३२॥

यजु ३-१७॥

हे शरीर-रक्षक परमात्मा, हमारे शरीर की रक्षा करें। आयु देने वाले परमात्मा, हमें आयु दें। तेज देने वाले भगवन्, हमें तेज दें और हे अग्निस्वरूप, मेरे शरीर में जो न्यूनता है, वह पूर्ण करें।

ओ३म् पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥३३॥यजु० १९-३९॥

मुझे विद्वान् जन पवित्र करें, मेरी बुद्धियाँ मुझे मन से भी पवित्र बनावें, सब प्राणी मुझे पवित्र करें। हे सर्वव्यापक और सर्वज्ञ प्रभो, आप भी मुझे पवित्र करें।

ओ३म् असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय ॥३४॥ शतपथ ब्राह्मण ॥

हे भगवन्, हमें असत् से सत् की ओर, तम से ज्योति की ओर तथा मृत्यु से अमत की ओर ले जाइये।

ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु ॥३५॥ यजु० ३२-१४॥

हे अग्ने, जिस मेधा बुद्धि को देवता और पितर चाहते हैं, वही मेधा हमें आज प्रदान करें।

ओ३म् रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥३६॥ यजु० १८-४८॥

हमारे ब्राह्मणों में शान्ति व तेज दीजिये। हमारे राजाओं, क्षत्रियों में तेज पैदा करें। वैश्यों और शूद्रों में कान्ति दें। मुझे तेज से युक्त कान्ति प्रदान करें।

ओ३म् प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥३७॥ अ० १९-६२-१॥

मुझे देवों और विद्वानों में प्रिय बना। मुझे राजाओं में प्रिय कर। सब देखने वालों का मुझे प्रिय बना। शूद्रों और वैश्यों में भी मुझे प्रिय बना।

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥३८॥
ऋ० १-८९-८॥

हम दिव्य गुणों से युक्त हों, कानों से अच्छा सुनें, यत्नशील हों और आँखों से अच्छा देखें, दृढ़ अंगों और शरीर से निरन्तर भगवान्

की स्तुति करते हुए भगवान् की दी हुई (उसके लिये अर्पित) आयु प्राप्त करें।

ओ३म् इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥३९॥ **ऋ० १-१३-९॥**

मातृभाषा, मातृ-सभ्यता और मातृभूमि तीनों सुखकारिणी स्थिर रूप देवियाँ हमारे हृदयासन पर विराजती रहें।

ओ३म् शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥४०॥

अ० १९-९-१॥

द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष तीनों लोक शान्ति-कल्याण करने वाले हों। नदियों के जल और औषधियाँ सभी कल्याणकारी हों।

ओ३म् मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥४१॥

यजु ३२। १५॥

हे श्रेष्ठ, तेजस्वरूप, प्रजापति, इन्द्र, वायु और समस्त विश्व के धारक भगवन् आप हमें अत्युत्तम मेधा दीजिये।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ॐ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥४२॥ यजु० ३६। २४॥

वह मंगलमय सबका द्रष्टा और देवों का हितकर्ता है। वही शुद्ध स्वरूप सृष्टि से पहले से भी विद्यमान है। हे भगवन्, हम सौ वर्षों तक जियें, देखें, सुनें, अच्छी तरह बोलें। किसी के आधीन न रहें। हमारी इन्द्रियाँ सौ वष तक अपना अपना काम करने में समर्थ रहें। सौ वर्ष के उपरान्त भी जियें और हमारी इन्द्रियाँ समर्थ रहें।

ओ३म् पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्त्तेरराव्णः। पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठय ॥४३॥ ऋ १।३६।१५।६२।

हे अग्निरूप भगवन्, हिंसाशील दुष्टों और कृपण धूर्तों से हमारी रक्षा कीजिये। हे महातेजस्वी ईश्वर, हमें मारने की इच्छा करने वालों से भी हमारी रक्षा कीजिये।

ओ३म् यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥४४॥ **यजु० ३६ ॥२॥**

हे बृहस्पति, मेरे नेत्र, हृदय और मन आदि की जो त्रुटियाँ हैं, उन्हें दूर कर दीजिये। आप समस्त भुवनों के स्वामी हैं, हमारा कल्याण कीजिये।

●●●

ईश्वर के उपदेश

ओ३म् ईशावास्यमिदᳬ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥४५॥

यजु० ४०-१ ॥

इस संसार में जो कुछ भी चराचर है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है। इसलिए उसका निष्काम भाव से भोग करो। किसी दूसरे के धन को मत लो।

ओ३म् कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतᳬ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥४६॥

यजु० ४०-२ ॥

हे मनुष्य, इस संसार में कार्य करते हुए तू सौ वर्ष तक जीने की इच्छा कर। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई रास्ता नहीं है। तुझमें कर्म लिप्त नहीं होंगे।

ओ३म् कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥४७॥

अ० ७-५०-८।

यदि दक्षिण हस्त में मेरा अपना किया हुआ कार्य या पुरुषार्थ है तो मेरे बायें हाथ में विजय (सफलता) धरी है। मैं अपने परिश्रम से गोधन, अश्वधन, स्वर्णधन आदि का विजेता बनूंगा।

ओ३म् मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥४८॥ अ० ३-३०-३॥

भाई भाई से द्वेष न करे, बहन बहन से द्वेष न करे। हम सब एक चाल वाले हों और एक व्रत हो कर भली रीति से अच्छी वाणी बोलें।

ओ३म् उत् क्रामातः पुरुष मावपत्था मृत्योः पड्बीशमवमुञ्चमानः।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥४९॥

अ० ८-१-४॥

हे मनुष्य, तुम आज जहाँ हो, उस स्थिति से आगे बढ़ो, नीचे की ओर मत गिर। मृत्यु के पाश से अपने को मुक्त करते इस लोक से अग्नि या सूर्य (इस संसार) के भोग से हीन न हो।

ओ३म् प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥५०॥ऋ १०-१०३-१३॥

हे मनुष्यो, आगे बढ़ो, विजय प्राप्त करो, आप लोगों को इन्द्र परमात्मा सुख और शान्ति दें, आप की बाहुएँ बलवान् हों, जिस से आप किसी के वश में न हों।

ओ३म् शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥५१॥ अ० ३-२४-५॥

हे पुरुष, तुम सौ सौ हाथों से कमाओ, किन्तु हजार हजार हाथों

से उसका दान भी करो। जो कर्म तुमने किये हैं और जो करने हैं, उनको खूब बढ़ाओ।

ओ३म् सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै ॥५२॥ तैति० ८-१॥

हम एक दूसरे की रक्षा करें, एक साथ मिल कर संसार भोगें, एक साथ मिल कर शक्ति बढ़ावें। हमारा अध्ययन हमें तेजस्वी बनाये। हम आपस में विद्वेष न करें।

ओ३म् दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि
समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥५३॥ यजु० ३६-१८॥

समस्त अज्ञानों के विदारक परमात्मा, मुझे दृढ़ कर। मुझे सब प्राणी मित्र की आँख से देखें। मैं भी सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं। हम सब एक दूसरे को मित्र की आँख से देखें।

ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥५४॥ यजु० १-५॥

सब के अग्रणी और व्रतपति परमात्मा, मैं नियम और धर्मपालन का व्रत धारण करता हूँ। उसे मैं कर सकूं और वह मेरा व्रत पूर्ण हो। मैं असत्य से सत्य को प्राप्त होता हूँ।

ओ३म् अनुव्रतः पितु पुत्रो मात्रा भवति संमनाः
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥५५॥ अ०३-३०-२॥

पुत्र पिता के व्रत का पालन करने वाला तथा माता का आज्ञाकारी हो। पत्नी पति से शान्ति युक्त मधुर वाणी बोलने वाली हो।

ओ३म् ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः
श्रोत्रं प्रपद्ये। वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥५६॥
यजु० ३६।१।

हे परमात्मन्, आप की कृपा से मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद

आदि का ज्ञान प्राप्त करूँ। मेरे प्राण, नेत्र, ओज, वागिन्द्रिय तथा प्राण और अपान सब ओजयुक्त व पुष्ट हों। ●●●

पापनिवारण

ओ३म् यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये ।
यदनेश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ।।५१।। य० ३-४५।।

हमने अपने ग्राम में, एकान्त जंगल में या सभा में इन्द्रियों के द्वारा जो पाप किये हैं, उन्हें हम दूर करते हैं।

ओ३म् इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि। यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ।।५२।।
अ० १९-९-५।।

ये जो पाँच इन्द्रियाँ (जिन में मन छठा है), मेरे हृदय में ब्रह्म ने तीव्र कर रखी हैं और जिनके द्वारा भयंकर काम किये जाते हैं, उन्हीं इन्द्रियों के द्वारा हम शान्ति प्राप्त करें।

ओ३म् मा नो महान्तमुत मा नोऽर्भकं
मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं
मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ।।५३।।
ऋ० १:११४-७।।

हे दुष्टों को रुलाने वाले रुद्र भगवन्, आप हमारे किसी पूज्य व्यक्ति को मत मारो, हमारे किसी बालक, युवक और नवयुवक, पिता और माता को मत मारो। हमारे शरीरों को भी पूर्ण आयु से पहले नाश मत करो।

ओ३म् परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि । परेहि न त्वा कामये वृक्षान्वनानि संचर । गृहेषु गोषु मे मिनः ॥४५॥

अथर्व ६-४५-१ ॥

हे मन में उठने वाले पाप के भाव, दूर हो जा। क्यों पाप के लुभावने दृश्य रखकर मुझे पाप में प्रवृत्त करता है? परे भाग जा, निर्जन वनों को भाग जा। प्रिय परिबार के सदस्यों में, पशुओं में तथा वेदचाणी की ओर मेरी वृत्ति हो।

मातृ-भूमि

ओ३म् सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति । सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥५६॥अ०१२-१-१

महान् सत्य बलवान् ऋतु, कार्य का संकल्प, तपस्या, ब्रह्मज्ञान, यज्ञ—ये सब पृथ्वी (मातृभूमि) को धारण करते हैं। यह भूमि हमारे किये हुए और किये जाने वाले कामों की रक्षा करे और हमें विशाल लोक दे।

ओ३म् उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः । पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥५७॥अ० १२-१-२८

हम लोग चलते हुए या बैठे हुए, ठहरे हुए या आगे बढ़ते हुए, दायें या बायें पैर से भूमि को कष्ट न दें। अर्थात् कोई ऐसा काम न करें, जिससे मातृभूमि का अहित हो।

ओ३म् भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियं मा धेहि भूत्याम् ॥५८॥ अ० १२-१-६३॥

हे मातृभूमि, मुझे भद्रलक्ष्मी से प्रतिष्ठित कर। हे अन्तर्दर्शिनी देवि, तू प्रकाश से समन्वित कर तथा मुझे सम्पत्ति व समृद्धि प्रदान कर।

ओ३म् यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योभिऽदासान्मनसा यो वधेन। तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥५९॥ अ० १२-१-१४ ॥

हे मातृभूमि, हमसे जो द्वेष करे या हम पर सेना से आक्रमण करे, जो मन और शस्त्र से हमें दास बनाना चाहे, उसको हे मनोरथों को पूर्ण करने वाली मातभूमि तू नष्ट कर दे। ●●●

ब्रह्मचर्य

ओ३म् ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥६०॥अ० ११-५-१७॥

ब्रह्मचर्य और तप से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। आचार्य भी ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्मचारी विद्यार्थी को चाहता है।

ओ३म् ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्म चयणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥६१॥
अ० १२-५-१९॥

कन्या ब्रह्मचर्य के द्वारा युवा पति को प्राप्त करती है। बैल और घोड़े जैसे शक्तिशाली पशु भी ब्रह्मचर्य के बल से भोग योग्य को ग्रहण करते हैं।

ओ३म् ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ।।६२।।

अथर्व ११ । ५ । १६

ब्रह्मचर्य और तप से देवता मृत्यु को वश में करते हैं । जीवात्मा इन्द्र भी ब्रह्मचर्य के द्वारा इन्द्रियरूपी देवों से सुख प्राप्त करता है ।

●●●

मधुर स्वभाव

ओ३म् मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।।६३।। ऋ० १ । ६० । ६

हमारे लिए वायु मधुरस लिये चलती है, नदियाँ मधु बहाती हैं । औषधियाँ भी मधु रस से युक्त होवें ।

ओ३म् मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः ।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ।।६४।। ऋ० १ । ६० । ७

रात और दिन मधुरता से युक्त हों, प्रत्येक पार्थिव कण प्रकाश और रक्षक समय हमारे लिए माधुर्य लाएँ ।

ओ३म् मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः ।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।।६५।। ऋ० १ । ६० । ८

हमारे लिए वनस्पति, सूर्य और उसकी किरणें माधुर्य से युक्त हों ।

ओ३म् मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ।।६६।। अथर्व १। ३४ । ३

मेरा आना जाना और दैनिक व्यवहार मीठा हो। मैं मीठी **वाणी बोलूँ ।**

●●●

श्रद्धा भक्ति

ओ३म् श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥६७॥

ऋ० १० । १५१ । १

श्रद्धा (अर्थात् सत्य का हृदय से धारण) से अग्नि प्रदीप्त किया जाता है, श्रद्धा से ही आहुति दी जाती है । हम श्रद्धा को ही धर्म, ज्ञान और ऐश्वर्य के प्रमुख रूप में जानते हैं ।

ओ३म् श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥६८॥

ऋ० १० । १५१ । ५

श्रद्धा को हम प्रातःकाल बुलाते हैं, दोपहर को भी हम श्रद्धा का आमन्त्रण करते हैं । सूर्य के अस्त होने पर भी हे श्रद्धे, हमें श्रद्धायुक्त कर । अर्थात् प्रतिक्षण हम अपने हृदय में श्रद्धा रक्खें ।

ओ३म् व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥६९॥

यजुः १९ । ३०

सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों के द्वारा मनुष्य दीक्षा को प्राप्त करता है । दीक्षा से दक्षिणा अर्थात् प्रतिष्ठा व लक्ष्मी को प्राप्त करना है और दक्षिणा से श्रद्धावान् होता है । श्रद्धा से सत्य प्राप्त किया जाता है ।

●●●

निर्भीकता

ओ३म् यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ ७० ॥ यजु: ३६ । २२

जहां जहां तू चेष्टा करता है, वहाँ वहाँ हमारे लिए अभय कर। हमारी प्रजाएं और हमारे पशु भी निर्भय हों।

ओ३म् अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥७१ ॥
अथर्व १९ । १५ । ५

हमारे लिए अन्तरिक्ष अभय करे, ये दोनों द्यौ और पृथ्वी भी हमारे लिए अभयकारी हों। आगे और पीछे से भी भय न हो। ऊपर और नीचे से भी हमें भय न हो।

ओ३म् अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥७२॥
अथर्व १९ । १५ । ६

मित्र और शत्रु दोनों से हमें भय न हो। ज्ञात पदार्थ और सामने की वस्तुओं से भी हमें निर्भय करो। दिन और रात्रि में भी हमें कोई भय न हो। सब दिशाएं मेरी मित्र हों।

ओ३म् यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥७३॥ अथर्व २ । १५ । १

जिस प्रकार द्यौ और पृथ्वी न डरते हैं और न मारे जाते हैं, उसी तरह मेरे प्राण भी न डरें।

ओ३म् यथा ऽहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥७४॥ अथर्व २ । १५ । २

जैसे दिन रात नहीं डरते और न मारे जाते हैं, उसी तरह मेरे प्राण भी भयभीत न हों।

ओ३म् यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभे एवा मे प्राण मा रिषः ॥७५॥

अथर्व १ । १५ । ३

जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा न डरते हैं और न मारे जाते हैं, उसी प्रकार मेरे प्राण भी न डरें और न क्षीण हों। ●●●

संगठन में बल है

ओ३म् सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥७६॥ ऋ १० । १९१ । २

जिस प्रकार पहले के विद्वान एक होकर अपना कर्त्तव्य करते रहे हैं, उसी तरह तुम सब एक चाल चलो, एक साथ एक सा **बोलो**। तुम्हारे मन एक सा जानें।

ओ३म् समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सहचित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥७७॥

ऋ० १० । १९१ ।३

तुम्हारे मन्त्र या विचार एक हों, तुम्हारी सभा एक सी हो

तुम्हारा मनन एक सा हो, तुम्हारा चित्त भी एक साथ हो। इसीलिए मैं तुम्हें एक से मन्त्र या विचार से अभिमन्त्रित करता हूँ। तुम सब को एक समान अन्न या उपभोग देता हूँ।

ओ३म समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥७८॥ ऋ० १० । १९१ । ४

तुम्हारे संकल्प और प्रयत्न मिलकर हों, तुम्हारे हृदय भी परस्पर मिले हुए हों, तुम्हारे अन्तःकरण एक समान हों, जिससे तुम सब मिल कर एक साथ उन्नति कर सको।

ओ३म समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा
नाभिमिवाभितः ॥७९॥ अथर्व ३ । ३० । ६

तुम्हारी प्याऊ और तुम्हारा भोजन एक साथ हो। मैं तुम्हें एक कार्य में नियुक्त करता हूँ। जिस प्रकार अरे चक्र की नाभि की सेवा करते हैं, उसी तरह तुम एक गति वाले होकर ज्ञानरूपी अग्नि की पूजा करो।

ओ३म् स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं
ब्रह्मवर्चसम्, मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥८०॥
अथर्व १९-७१-१

भगवान् का उपदेश—मैंने द्विजों को पवित्र करने वाली वेद-माता प्रस्तुत करदी है। इसकी शिक्षाओं पर आचरण करके आयु, प्राण, सन्तान, पशु, सम्मान, धन और तेज को प्राप्त करो, लेकिन इनका प्रयोग स्वार्थ के लिए न करके ब्रह्मार्पणपूर्वक परोपकारार्थ करो।

●●

वैदिक सूक्तियाँ

ओ३म क्रतो स्मर ।

हे कर्मशील मनुष्य, तू परमात्मा का स्मरण कर ।

येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ।

प्रभु जिनका सहायक है, वे विजयी होते हैं ।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो ।

पुत्र पिता से अनुकूल व्रत का आचरण करे ।

न स सखा यो न ददाति सख्ये ।

जो मित्र को सहायता नहीं देता, वह मित्र ही क्या ?

केवलाघो भवति केवलादी ।

अकेला भोग करने वाला पाप को ही भोगता है ।

चारु वदानि पितरः सङ्गतेषु ।

मैं सभाओं में अच्छा साफ बोलूं ।

मा नो द्विक्षत कश्चन ।

हमें कोई द्वेष न करे ।

न स्तेयमद्मि ।

कभी चोरी कर अकेला न खाऊं ।

माहिः भूर्मा पृदाकुः ।

सर्प और अजगर के समान जहरीला मत बन ।

भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।

अच्छे अच्छे कार्य हमें कराओ ।

अश्मा भवतु नस्तनूः ।

हम सब के शरीर पत्थर के समान दृढ़ हों ।

बलं धेहि तनूषु नः ।

हमारे शरीर बलवान हों ।

अयं मे हस्तो भगवान् ।

यह मेरा हाथ ही ऐश्वर्य पैदा कर सकता है ।

अदीनाः स्याम शरदः शतम् ।

हम सौ वर्ष तक दीनतारहित होकर जीवें ।

मा व स्तेन ईशत माघशंसः ।

चोर, डाकू व पापी हम पर शासन न करें ।

पावका नः सरस्वती ।

विद्या हमें पवित्र करे ।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।

भूमि मेरी माता है, मैं उस मातृभूमि का पुत्र हूँ ।

यतेमहि स्वराज्ये ।

हम स्वराज्य के लिये यत्न करें ।

वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ।

हम मातृभूमि के लिये आत्म-बलिदान करने वाले हों ।

सिंहा इव नानदति प्रचेतसः ।

पूर्ण ज्ञानी शेर की तरह गरजते हैं ।

मा पुरा जरसो मृथाः ।

हे मनुष्य, तू बुढ़ापे से पहले मत मर ।

बहु बाह्वोर्बलम् ।

मेरी दोनों भुजाओं में बल हो ।

उप सर्प मातरं भूमिम्

मातृभूमि की सेवा कर ।

अहमिन्द्रो न पराजिग्ये

मैं इन्द्र आत्मा हूँ, मुझे कोई नहीं जीत सकता ।

भूत्यै जागरणम् अभूत्यै स्वपनम्

जागरूकता से ऐश्वर्य और निद्रा से दरिद्रता मिलती है ।

मा नो हिंसीः पितरं मातरं च

हे प्रभो, हमारे माता पिता को कोई कष्ट मत दो ।

मा सुमतिं कृधि

हे भगवान, मुझे सुमति वाला कर ।

वयं सर्वेषु यशसः स्याम

हम सब में यशस्वी बनें ।

सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।

सत्य बोलूंगा, असत्य नहीं ।

चलते रहो

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम ।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा ।। चरैवेति चरैवेति चरैवेति

कठिन परिश्रम करके जो थक नहीं जाता, उसे लक्ष्मी या सफलता प्राप्त नहीं होती। सम्बन्धियों के पास निठल्ला बैठकर खानेवाला श्रीहीन हो जाता है। इन्द्र या ऐश्वर्य परिश्रमशील का ही मित्र होता है। इसलिए ठहरो मत, चलते रहो, चलते रहो।

पुष्पिण्यौ चरतो जंघे भूष्णुरात्मा फले ग्रहिः ।
शेरे ऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः ।। चरैव० ।।

निरन्तर चलने वाले की जंघाएं ही सफलता देने वाली हैं, आत्मा उन्नति और फल को प्राप्त करता है। परिश्रमी मनुष्य के सब पाप सो जाते हैं और श्रम से नष्ट हो जाते हैं। इसलिए ठहरो मत, चलते रहो।

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः ।
शेते निपद्यमानस्य चरति चरतो भगः ।। चरैव ।।

बैठे हुए का भाग्य भी बैठ जाता है। खड़े हुए का भाग्य ऊँचा खड़ा हो जाता है। लेटे हुए का भाग्य भी सो जाता है और चलने वाले का भाग्य भी चलने लगता है। इसलिए ठहरो मत, चलते रहो।

कलिः शयानो भवति सँजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्तु त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरत् ।। चरैव ।।

सोने वाले के लिए समय कलियुग के समान है, जम्हाई लेने वाले के लिए द्वापर युग के समान। उठकर खड़े होने वाले के लिए समय त्रेता युग के समान उन्नतिशील होता है। परिश्रम पूर्वक चलने वाले के लिए तो वह सतयुग ही हो जाता है।

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ॥ चरैव ॥

मनुष्य चलते हुए ही मधुर आहार प्राप्त करता है और परिश्रमपूर्वक स्वादु फल खा सकता है। सूर्य के परिश्रम को लक्ष्य बनाओ। वह चौबीसों घन्टे चलता रहता है और कभी आलस्य नहीं करता।

[उपर्युक्त उपदेश ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार एक वयोवृद्ध ब्राह्मण ने हतवीर्य आलसी राजा रोहित को दिया था।] ●●●

गीता के रत्न

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१॥

जिस तरह इस शरीर में बचपन के बाद जवानी और जवानी के बाद वृद्धावस्था आती है, उसी तरह मृत्यु के बाद दूसरे शरीर को भी आत्मा प्राप्त करता है। धीर लोग मृत्यु पर दुःख नहीं करते।

न जायते म्रियते वा कदाचि—
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२॥

आत्मा न कभी पैदा होता है, न कभी मरता है। न यह होकर फिर न होगा। यह आत्मा तो अजन्मा, नित्य, सदा एकरूप और सनातन है। यह शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मारा जाता।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥३॥

जैसे जीर्ण वस्त्रों को छोड़कर मनुष्य दूसरे नये वस्त्र धारण कर लेता है, वैसे शरीर का स्वामी आत्मा जीर्ण शरीर छोड़कर दूसरे नये शरीर प्राप्त कर लेता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥४॥

इस आत्मा को न शस्त्र काटते हैं, न अग्नि जलाता है। इसे पानी भी नहीं गला सकता और न वायु ही इसे सुखा सकता है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ ५ ॥

यह आत्मा न काटा जा सकता है, न जलाया जा सकता है। यह न गलाया या सुखाया जा सकता है। यह नित्य, सर्वव्यापक, अविकारी, अचल और सनातन है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥७॥

विषयों का चिन्तन करने से उनमें आसक्ति हो जाती है। इस आसक्ति से काम उत्पन्न होता है और काम से क्रोध पैदा होता है। क्रोध से अविवेक और अविवेक से स्मृति (शास्त्र स्मरण) का नाश होता है। स्मृति के नाश से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि के नाश से स्वयं नष्ट हो जाता है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूः मा ते सङ्गो ऽस्त्वकर्मणि ॥८॥

तुम कर्म के ही अधिकारी हो, फल का अधिकार तुम्हें नहीं है। फल की आकांक्षा मत करो। अकर्म या कर्महीनता से मोह मत करो।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥९॥

आसक्ति छोड़ कर कुशलता व एकाग्रता से काम करो। हानि लाभ में समान बुद्धि रखो। यह समान भाव ही योग है।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥१०॥

काम और क्रोध रजोगुण से उत्पन्न होते हैं। यह बहुत कुछ खा जाता है (नष्ट कर डालता है)। यह बहुत बड़ा पापी है। उसे तू अपना शत्रु समझ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥११॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥१२॥

जब जब धर्म का पतन और अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब मैं उत्पन्न होता हूं। मैं साधुओं की रक्षा के लिये, दुष्टों के विनाश के लिए और धर्मस्थापना के लिए युग युग में उत्पन्न होता हूँ। (महान् आत्मा संसार के उपकार के लिए यही कामना करते हैं)।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥१३॥

जो मनुष्य विद्या विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल को एक दृष्टि से देखते हैं, वे ही पण्डित होते हैं।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव आत्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥१४॥

अपनी उन्नति अपने यत्न से करे, अपने को कभी नीचे नहीं झुकावे। आत्मा ही अपना हितकारी बन्धु है और मनुष्य स्वयं ही अपना शत्रु है।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामःक्रोधस्तथा लोभः तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥१५॥

काम, क्रोध और लोभ नरक के द्वार हैं तथा आत्मा को नाश करने वाले हैं। इसलिए इन तीनों को छोड़ दे।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥१६॥

सामान्य जन जिसे रात समझते हैं, (कर्त्तव्यों से उदासीन होकर सोते रहते हैं) संयमी अपने कर्त्तव्यपालन के प्रति जागरूक रहता है। जब सांसारिक भोगों के लिए लोग भाग दौड़ करते हैं, तब मननशील उनसे उदासीन हो जाता है।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥१७॥

जब कोई पुरुष अपने मन की सब सांसारिक इच्छाओं को छोड़ देता है और अपने आप में सन्तुष्ट रहता है, उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं मतं मम ॥

वही दान सात्विक होता है, जो देश, काल और पात्र का विचार करके कर्त्तव्य बुद्धि से प्रत्युपकार का भाव लाये विना दिया जाता है।

●●●

धर्म-गौरव

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥१६ ॥

धैर्य, क्षमा, चित्तवृत्तियों का दमन, चोरी न करना, आन्तरिक और बाह्य शुद्धि, इन्द्रिय-संयम, बुद्धि, विद्या, सत्य तथा क्रोध न करना ये धर्म के दस लक्षण है।

आहारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥२०॥

आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये सब पशुओं व मनुष्यों में समान हैं। पशु से मनुष्य की एक विशेषता धर्म ही है। धर्म से रहित मनुष्य पशुओं के समान होते हैं।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥२१॥

महर्षि व्यास के विशालकाय अठारह पुराणों में से दो वाक्य बहुत महत्वपूर्ण है। परोपकार करना पुण्य है, परपीड़न पाप है।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमायाति याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥२२॥

धन तो आता जाता रहता है, इसलिये शील व चरित्र की यत्न-पूर्वक रक्षा करे। धनहीन पुरुष का पतन नहीं होता। शील व चरित्र से हीन पुरुष का पतन हो जाता है।

सपदि विलयमेतु राजलक्ष्मी—
रुपरि पतन्त्वथवा कृपाणधाराः।
अपहरतुतराँ शिरः कृतान्तो
मम तु मतिर्न मनागुपैतु धर्मात् ॥२३॥

राजलक्ष्मी चाहे आज ही चली जाय, चाहे मुझपर तेज़ धार वाली तलवार आज ही गिर पड़े, यमराज आज ही मेरा सिर काट ले, किन्तु मेरी बुद्धि धर्म से जरा भी विचलित न हो।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥२४॥

वेद व स्मृति की शिक्षाएँ, सदाचार के नियम तथा अपने को जो प्रिय लगे, दूसरों के साथ वही व्यवहार, यह चार प्रकार का धर्म है।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥२५॥

शरीर अनित्य अर्थात् नाशशील है, सम्पत्ति भी निरन्तर नहीं रहती। मृत्यु का भय सदा रहता है, इसलिए धर्म का संग्रह सदा करना चाहिए।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो ऽ वधीत् ॥२६॥

यदि धर्म की हम उपेक्षा करदें, तो वह हमें भी मार देता है। धर्म का पालन करें, तो वह भी हमारी रक्षा करता है। इस लिए धर्म को न छोड़ो, ताकि मारा हुआ धर्म हमें न मार दे।

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥२७॥

लक्ष्मी (धन) और प्राण दोनों इस जीवन में चले जाने वाले हैं। इस चलाचली के संसार में केवल मात्र धर्म ही स्थिर है।

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम्
न तृष्णया परो व्याधिर्न च धर्मो दयापर : ॥२८॥

शान्त रहने के समान और कोई तप नहीं है। संतोष से बढ़कर और कोई सुख नहीं है। तृष्णा वा लालच से बढकर कोई रोग नहीं है और दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

धर्मो माता पिता चैव धर्मो बन्धुः सुहृत्तथा ।
धर्मः स्वर्गस्य सोपानं धर्मात्स्वर्गमवाप्यते ॥२९॥

धर्म ही माता, पिता, बन्धु, मित्र सब कुछ है। धर्म स्वर्ग की सीढ़ी है। धर्म से स्वर्ग प्राप्त किया जाता है।

वने रणे शत्रजलाग्निमध्ये
महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥३०॥

मनुष्य जंगल में हो, युद्ध क्षेत्र में हो, शत्रु, जल व अग्नि के बीच में हो, विशाल समुद्र में हो या पर्वत के शिखर पर सो रहा हो बेहोश हो या कठिनाइयों में ग्रस्त हो, पिछले किये हुए धर्म ही उसकी रक्षा करते हैं।

महान् पुरुषों की विभूतियां

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।।३१।।

ऐसे सज्जन इस संसार में बहुत कम होते हैं, जिनके मन, वचन और शरीर में पुण्यरूपी अमृत भरा है, जो त्रिलोक को अपने उपकार से प्रसन्न करते हों और जो दूसरे के तुच्छ गुणों को भी पर्वत के समान बड़ा मानते हों।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ।।३२।।

महान् पुरुषों में यह गुण स्वभावतः ही पाये जाते हैं—विपत्ति में धैर्य, अभ्युदय (उन्नति) में क्षमा, सभा में भाषण-कुशलता, युद्ध में विक्रम, यश में रुचि और वेद-शास्त्र के अध्ययन में व्यसन।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥३३॥

नीतिकुशल आदमी, चाहे उनकी निन्दा करें या प्रशंसा, धन उनके पास आवे या चला जाये, उनकी मृत्यु आज हो अथवा बहुत समय बाद, धीर महापुरुष न्यायोचित कार्य से एक कदम भी विचलित नहीं होते।

संपदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च भीरुत्वम्।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम् ॥३४॥

जिस पुरुष को संपत्ति मिल जाने पर न हर्ष हो, विपत्ति में विषाद और युद्ध में डर न हो, तीनों लोकों में शिरोमणि ऐसे विरले पुरुष ही कोई माता पैदा कर सकती है।

कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ॥३५॥

फूलों के गुच्छे की तरह से मननशील महापुरुषों की दो अवस्थाएँ होती हैं। या तो सब आदमियों के पूज्य बनकर रहते हैं अथवा जंगल में ही पड़े हुए मुरझा जाते हैं।

संपत्सु महतां चित्तं भवेदुत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम्॥ ३६॥

महान् पुरुषों का चित्त सम्पन्नता या सुख में कमल की तरह कोमल होता है और विपत्ति में पर्वतों की बड़ी-बड़ी शिलाओं के

संघात की तरह कठोर हो जाता है अर्थात् वे कभी घबराते नहीं हैं।

वदनं प्रसादसदनं, सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ॥३७॥

जिन महानुभावों का मुख प्रसन्न है, हृदय दयालु है, वाणी अमृतभरी मधुर है, कर्त्तव्य परोपकार है, वे सभी के लिए वन्दनीय होते हैं।

तृणानि नोन्मूलयन्ति प्रभञ्जनो
मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः
स्वभाव एवोन्नतचेतसामयं
महान्महत्स्वेव करोति विक्रमम् ॥८३॥

आँधी या बवंडर कोमल नीचे झुकी हुई घास को नहीं उखाड़ता। वह तो बड़े-बड़े वृक्षों को ही उखाड़ता है। उन्नत चित्त वालों का यह स्वभाव ही है कि महान्-व्यक्ति अपने समान बल वालों से ही जूझते हैं।

विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥३९॥

दुष्ट पुरुष विद्या का प्रयोग विवाद या बहस के लिए, धन का अपने घमण्ड के लिए और बल का प्रयोग दूसरों को सताने के लिए करते हैं। किन्तु इसके विपरीत सज्जन विद्या, धन और शक्ति का प्रयोग ज्ञान, दान और लोकरक्षण के लिए करते हैं।

संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ।
उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा ॥४०॥

सम्पत्ति या समृद्धि और विपत्ति दोनों में महापुरुष एक समान रहत हैं । सूर्य उदय के समय जैसे लाल रहता है, वैसे ही अस्त होने के समय भी ।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥४१॥

महापुरुषों के हृदय पाप व असत्य के प्रति वज्र से भी कठोर और दुःखी के प्रति कुसुम से भी कोमल होते हैं । उनका रहस्य बहुत कम लोग जान पाते हैं ।

किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा ।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्तिमान् ॥४२॥

जैसे उस गौ से कोई लाभ नहीं, जो न दूध दे और न बछड़े पैदा करे, उसी तरह वह पुत्र भी किसी काम का नहीं, जो न विद्वान हो और न भक्त हो ।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥४३॥

जो आदमी पर स्त्री को माता के समान, परधन को मिट्टी के ढेले के समान तथा सब प्राणियों को अपने समान देखता है, वही पण्डित है ।

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥४४॥

इस परिवर्तनशील संसार में हर एक प्राणी ही मर के पुनर्जन्म धारण करता है। किन्तु जन्म उसी का सार्थक है, जिस के जन्म से सम्पूर्ण वंश की उन्नति होती है।

श्रोत्रं श्रुतनैव न कुण्डलेन
दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन
विभाति कायः करुणाकुलानां
परोपकारेण न चन्दनेन ।।४५।।

कानों की शोभा वेदादि शास्त्रों के श्रवण से होती है, न कि कुण्डल धारण करने से। हाथ की शोभा कङ्कण से नहीं, दान से बढ़ती है। करुणा से आकुल पुरुषों का शरीर चन्दन-लेपन से नहीं, परोपकार से ही शोभा पाता है।

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण
लघ्वी पुरा वृद्धिमुपैति पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्धं परार्धभिन्ना
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ।।४६।।

खलों और सज्जनों की मैत्री क्रमशः दिन के पूर्वार्द्ध और परार्द्ध की छाया की भाँति होती है। पूर्वार्द्ध की छाया प्रारम्भ से तो बड़ी होती है और फिर कम होती जाती है। इसके विपरीत परार्द्ध की छाया पहले छोटी होती है और फिर बढ़ती जाती है।

स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनायात्यधोगतिम्।
अहो सुसदृशी चेष्टा तुलायष्टेः खलस्य च ।।४७।।

तराजू के पलड़ों के समान ही क्षुद्र व्यक्ति भी होते हैं। थोड़े से ही घमण्ड करने लगते हैं, और थोड़ा सा कम हो जाने पर नीचे झुक जाते हैं, निराश हो जाते हैं।

हस्ती स्थूलतरः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशः
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः।
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रो गिरि-
स्तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥४८॥

विशालकाय हाथी भी अंकुश के वश में हो जाता है। क्या अंकुश हाथी के बराबर विशाल होता है ? छोटे से दिये के जलने पर बड़े कमरे का अंधकार नष्ट हो जाता है। क्या दिया अंधकार के बराबर होता है ? वज्र से बड़े-बड़े पर्वत भी टूट जाते हैं। क्या वज्र पर्वत के समान बड़ा होता है ? नहीं, बात यह है कि जिसमें तेज हो, वही बलवान् होता है। विशालता या शरीर की स्थूलता पर ही भरोसा नहीं करना चाहिए।

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥४९॥

छोटे दिल वाले ही यह मेरा है, यह तेरा है, आदि कहते हैं। उदार चित्त वाले तो सम्पूर्ण संसार को ही अपना परिवार मानते हैं।

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।

मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय प्रश्रयं
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां चेष्टितम् ॥५०॥

तृष्णा लालच को नष्ट कर, क्षमा गुण का धारण कर, पाप में रुचि मत कर, सत्य भाषण कर, साधुओं के पीछे चल, विद्वानों की सेवा कर, माननीय पुरुषों का आदर कर, शत्रुओं से भी प्रेम कर, पीड़ितों को प्रश्रय दे, कीर्ति बढ़ा और दुःखित पर दया कर यही सब कार्य महापुरुषों के होते हैं।

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥५१॥

अपने उपकारी के साथ साधुता दिखाने में कोई बड़ाई नहीं है। अपने अपकारी के साथ भी सद्व्यवहार करने वाला सच्चा साधु है।

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगंधं
छिन्नश्छिन्नः पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षु दण्डः
तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं
प्राणान्तेऽपि प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम् ॥५२॥

उत्तम पुरुष प्राणभय होने पर भी अपने उत्तम स्वभाव को नहीं छोड़ते। चन्दन बार बार घिसे जाने पर भी सुगन्ध नहीं छोड़ता। गन्ना बार बार चूसे जाने पर भी मिठास देता रहता है। सोना बार-बार तपाये जाने पर भी अपने सुन्दर वर्ण को नहीं छोड़ता।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निर्घर्षणच्छेदनतापताड़नैः।
चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते ज्ञानेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥५३॥

सोने की परीक्षा घिसने, काटने, तपाने और पीटने से की जाती है उसी तरह सच्चा मनुष्य अपने ज्ञान, शील, गुण और कर्म से जाना जाता है।

चलं चित्तं, चलं वित्तं, चले जीवितयौवने।
चलाचलमिदं सर्वं कीर्तिर्यस्य स जीवति ॥५४॥

चित्त, वित्त, जीवन, यौवन सब चंचल और नाशशील हैं। जिसकी कीर्ति स्थिर है, उसीका जीवन अमर है।

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्त तुरगाः
निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि।
रविर्यात्येव प्रतिदिनमपारस्य नभसः
क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे ॥५५॥

रथ का एक पहिया, सांपों से बन्धे हुए सात घोड़े, बिना किसी आधार का मार्ग, और बिना पैर का रथ चलाने वाला सारथि, तब भी सूर्य प्रतिदिन आकाश की एक सिरे से दूसरे सिरे तक यात्रा पूरी कर लेता है। वस्तुतः कार्य की सफलता स्थूल उपकरणों से नहीं, महान् आत्माओं के मनोबल से होती है। ●●●

विद्या-महिमा

येषां न विद्या न तपो न दानं
न चापि शीलं न गुणो न धर्मः

ते मृत्युलोके भुवि भारभूताः

मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।५६।।

जिन लोगों के पास न विद्या है, न तप, न दान है और न शील, और जिनके पास धर्म भी नहीं है, वे संसार में पृथ्वी पर भारस्वरूप होकर मनुष्य के वेश में पशु के समान हैं।

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ।।५७।।

विदेश में विद्या मित्र के समान काम करती है। घर में पत्नी मित्र है। रोगी के लिए औषधि मित्र है और मरे हुए का मित्र केवल धर्म है।

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसंभवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ।।५८।।

जिस तरह बिना गन्ध के किंशुक लाल फूलों को कोई नहीं पूछता, उसी तरह रूप यौवन से युक्त और विशाल कुल में उत्पन्न पुरुष भी यदि विद्याहीन हो, तो उनका कोई आदर नहीं होता।

सुखार्थी चेत्त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत्त्यजेत्सुखम् ।

सुखार्थिनां कुतो विद्या विद्यार्थिनां कुतः सुखम् ।।५९।।

सुख चाहने वाले को विद्या की इच्छा नहीं करनी चाहिए और विद्यार्थी को सुख नहीं ढूँढना चाहिए। सुखार्थी को विद्या और विद्यार्थी को सुख प्राप्त नहीं होते।

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति ।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात् ॥६०॥

हे सरस्वती, तुम्हारे पास एक अद्‌भुत कोश है, जो खर्च करने से बढ़ता है और जमा करने से कम हो जाता है।

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्ये कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥६१॥

विद्वान और राजा किसी तरह भी परस्पर समान नहीं हैं। राजा की तो अपने देश में ही पूजा होती है और विद्वान की सब जगह पूजा होती है।

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः ।
वासुदेवं नमस्यन्ति वसुदेवं न मानवाः ॥६२॥

पितृवंश को कोई नहीं पूछता, गुणों की सर्वत्र पूजा होती है। लोग वासुदेव (कृष्ण) को नमस्कार करते हैं, न कि उनके पिता वसुदेव को।

ज्ञातिभिर्वण्ट्यते नैव चौरेणापि न नीयते ।
न दानेन क्षयं याति विद्यारत्नं महाधनम् ॥६३॥

विद्या रूपी एक ऐसा धन है, जिसको न बिरादरी वाले भाई बन्धु बाँट सकते हैं और न चोर ले जा सकते हैं। दान से भी इस का क्षय नहीं होता।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गरुः ।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता

विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः ॥६४॥

विद्या ही मनुष्य का रूप है। विद्या ही अत्यन्त सुरक्षित धन है। विद्या से भोग भोगे जा सकते हैं। विद्या यश और सुख को देने वाली है। विद्या ही गुरुओं की गुरु और विदेश में सबसे बड़ा बन्धु है। विद्या बहुत बड़ी देवता है । विद्या की सर्वत्र पूजा होती है, धन की नहीं। विद्या से विहीन मनुष्य पशु के समान है।

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः

न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः ।

वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते

क्षीयन्तेऽखिलभूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥६५॥

केयूर और चन्द्रहारों से मनुष्य की शोभा नहीं होती । स्नान, उबटना, फूल या संवारे बालों से भी मनुष्य का आदर नहीं होता । संस्कृत शुद्ध वाणी (विद्या) ही पुरुष को शोभा देती है। अन्य सब भूषण नष्ट हो जाते हैं, वाणी का भूषण ही सच्चा भूषण है।

न चौरहार्यं न च राजहार्यं

न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि ।

व्यये कृते वर्धत एव नित्यं

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ॥६६॥

विद्या रूपी धन को न चोर चुरा सकता है, न राजा ही छीन सकता है। न इसे भाई बांट सकते हैं और न यह किसी तरह का भार ही डालती है। व्यय करने पर भी यह बढ़ती है। विद्या धन सर्वश्रेष्ठ है।

सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्द-
मर्धो घटो घोषमुपैति नूनम् ।
विद्वान्कुलीनो न करोति गर्वं
गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति ॥ ६७॥

जैसे पूरी तरह भरा हुआ घड़ा शब्द नहीं करता है, अधभरा घड़ा खूब आवाज करता है, उसी तरह विद्वान कुलीन भी गर्व नहीं करता । गुणों से रहित मूर्ख ही बहुत गर्व करते हैं, बकवाद करते हैं ।

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन भासते ।
कुलं पुरुषसिंहेन चन्द्रेणैव हि शर्वरी ॥६८॥

जैसे एक चन्द्र से ही रात्रि चमकती है, उसी तरह पुरुषसिंह और विद्यायुक्त एक सुपुत्र से भी सम्पूर्ण कुल चमक जाता है ।

अजरामरवत्प्राज्ञः विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत एव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥६९॥

बुद्धिमान पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह अजर और अमर की तरह विद्या और अर्थ को प्राप्त करे । न जाने कब मृत्यु आ जाय, इस भय से सदा धर्म का आचरण करे ।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥७०॥

जिस माता पिता ने बालक को नहीं पढ़ाया, वह दोनों उसके शत्रु होते हैं । हंसों के बीच में बगुले की तरह मूर्ख मनुष्य भी सभा में शोभा नहीं पाता ।

विद्या विनयोपेता हरति न चेतांसि कस्य मनुजस्य ।
काञ्चनमणिसंयोगो न जनयति कस्य लोचनानन्दम् ॥७१॥

विनय से युक्त विद्या किस मनुष्य के चित्त को प्रसन्न नहीं करती? सोने में जड़ी हुई मणि किस पुरुष की आँखों को अच्छी नहीं लगती?

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मंमतः सुखम् ॥७२॥

विद्या मनुष्य को विनय प्रदान करती है, विनय से वह योग्य हो जाता है। योग्यता से धन और धन से धर्म व सुख को वह प्राप्त करता है।

नक्षत्रभूषणं चन्द्रो नारीणाँ भूषणं पतिः ।
पृथिवीभूषणं राजा विद्या सर्वस्य भूषणम् ॥७३॥

तारों की शोभा चन्द्र से, नारी की शोभा पति से और पृथिवी की शोभा राजा से होती है। विद्या से सब का सम्मान होता है।

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम् ।
तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति ॥७४॥

जिस मनुष्य ने अपनी आयु के प्रथम भाग (विद्यार्थी जीवन) में विद्या नहीं पाई, द्वितीय भाग में धन और तीसरे भाग में धर्म नहीं कमाया, वह चौथे भाग में क्या करेगा?

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम् ।

लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्ति
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥७५॥

विद्या कल्पलता की तरह सब लाभ पहुँचाती है। वह माता की तरह रक्षा करती है, पिता की भाँति हितकार्य में प्रेरित करती है। प्रिय पत्नी की तरह दुःख दूरकर प्रसन्न करती है और धन सम्पत्ति देकर यश फैलाती है। ●●●

सत्संगति

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥७६॥

सत्संगति बुद्धि की जड़ता को दूर करती- है, वाणी में सत्य को सींचती है, सम्मान प्रदान करती है, पाप को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और सब दिशाओं में कीर्ति का प्रसार करती है। बताओ, सत्संगति पुरुष को कौन-कौन सा लाभ नहीं पहुँचाती ?

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमाः।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसंगतिः ॥७७॥

संसार में चंदन शीतल होता है। चन्द्रमा चन्दन से भी शीतल होता है, पर साधुओं की संगति इन दोनों से शीतल होती है।

असतां संगदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम् ।
दुर्योधनप्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणे गतः ॥७८॥

दुर्जनों के संग के दोष से साधु भी बिगड़ जाते हैं। दुर्योधन की संगति से भीष्म जैसा वयोवृद्ध भी गौहरण के लिए चला गया।

संगतिः श्रेयसी पुंसाँ स्वपक्षे च विशेषतः ।
तुषैरपि परिभ्रष्टा न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ॥७९॥

सत्संगति पुरुषों को बहुत लाभ पहुंचाती है और विशेषकर अपनी जाति की । चावल तुस से अलग किये जाने पर पैदा नहीं होते।

महाजनस्य संपर्कः कस्य नोन्नतिकारकः ।
पद्मपत्रस्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ॥८०॥

महान् पुरुष के संपर्क से किस की उन्नति नहीं होती ? कमलपत्र पर स्थित पानी मोती जैसा चमकता है।

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते
स्वातौ सागरशुक्तिकुक्षिपतितं तज्जायते मौक्तिकम् ।
प्रायेणाधमम ध्यमोत्तमगुणः सङ्गत्सतो जायते ॥८१॥

खूब गरम लोहे के ऊपर पड़े हुए जिस जल का चिन्ह भी नहीं बचता, वही जल कमलपत्र पर मोती के समान चमकता है। वही जल स्वाति नक्षत्र में समुद्र की सीप में गिरकर मोती बन जाता है। संगति के अनुसार मनुष्य में प्रायः अधम, मध्यम और उत्तम गुण उत्पन्न होते हैं ।

सत्य–महिमा

सत्यन धार्यत पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।।८२।।

सत्य से पृथ्वी स्थिर रहती है, सत्य से सूर्य गरमी पाता है, सत्य के कारण ही वायु में गति आती है। सब कुछ सत्य में ही स्थित है।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः ।।८३।।

सदा सच बोले, पर प्रिय बोले। अप्रिय सत्य कभी न बोले। प्रिय असत्य भी न बोले। यही सनातन धर्म है।

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा ।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ।।८४।।

मेरे छः बन्धु हैं—सत्य माता है, ज्ञान पिता है, धर्म भाई है, दया मित्र है, शान्ति मेरी पत्नी है और क्षमा मेरा पुत्र है।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
धर्मो न वै यत्र च नास्ति सत्यं
सत्यं न तद् यच्छलेनानुविद्धम् ।।८५।।

वह सभा नहीं है, जहां वृद्ध नहीं होते। वे वृद्ध नहीं हैं, जो धर्म की बात नहीं करते। वह धर्म नहीं है, जिस में सत्य नहीं है और वह सत्य नहीं है, जिस में छल मिला हुआ है।

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥८६॥

दुष्ट मनुष्यों के मन में कुछ होता है, वचन और कर्म में कुछ और। किन्तु महात्माओं के मन, वचन और कर्म एक रहते हैं। ●●●

क्रोधनिन्दा

क्रोधो नाशयते धैर्यं क्रोधो नाशयते श्रुतम् ।
क्रोधो नाशयते सर्वं नास्ति क्रोधसमो रिपुः ॥८७॥

क्रोध धैर्य, विद्या आदि सब कुछ नष्ट कर डालता है। क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं है।

क्रोधो हि शत्रुः प्रथमो नराणां
देहस्थितो देहविनाशनाय ।
यथा स्थितः काष्ठगतो हि वन्हिः
स एव वन्हिर्दहते च काष्ठम् ॥८८॥

मनुष्य का सबसे मुख्य शत्रु क्रोध है। यह देह में रहता हुआ ही देह को नष्ट कर डालता है, जैसे काष्ठ में स्थित अग्नि काष्ठ को ही जला डालता है।

अक्रोधेन जयेत्क्रोधमसाधुं साधुना जयेत् ।
जयेत्कदर्यं दानेन जयेत्सत्येन चानृतम् ॥८९॥

अक्रोध (शान्ति) से क्रोध पर विजय पावे। असाधु पर साधुता के द्वारा, क्षुद्र पर दान के द्वारा और असत्य पर सत्य के व्यवहार से विजय प्राप्त करे। ●●●

मधुर वाणी

लक्ष्मीर्वसति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे मित्रबान्धवाः ।
जिह्वाग्रे बन्धनं प्राप्तं जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥९०॥

पुरुष की जिह्वा के आगे (मधुर वाणी के कारण) लक्ष्मी रहती है और इसी कारण मित्र बन्धु बनते हैं। (कठोर वाणी के द्वारा) जीभ के अग्रभाग पर बन्धन और मृत्यु भी विद्यमान हो जाते हैं।

रोहति सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तया विद्धं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥९१॥

बाणों से बींधा गया और कुल्हाड़े से काटा गया जंगल फिर पैदा हो जाता है, किन्तु कठोर वाणी से बींधा गया हृदय फिर कभी नहीं जुड़ता ।

प्रियवाक्यप्रदानेन, सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं, वचने का दरिद्रता ॥९२॥

प्रिय मधुर वाणी से सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं। इस लिये प्रिय वाणी ही बोलनी चाहिये। वचनों में कंजूसी क्या करनी ? ●●●

संतोष

सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते
शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति ।
कन्दैः फलैर्मुनिवरा गमयन्ति कालं
संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥९३॥

सांप हवा खाकर ही गुजारा करते हैं, किन्तु वे दुर्बल नहीं होते। सूखा घास खा कर भी हाथी बलवान होते हैं। कन्दमूल खाकर ही मुनि दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं। संतोष पुरुष का बहुत बड़ा आश्रय है।

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥९४॥

संतोष रूपी अमृत से सन्तुष्ट और शान्तचित्त लोगों को जो सुख प्राप्त होता है वह धन के लोभ में इधर उधर भटकने वालों को कहां मिल सकता है ?

अन्तो नास्ति पिपासायाः संतोषः परमं सुखम् ।
तस्मात्सन्तोषमेवेह परं पश्यन्ति पण्डिताः ॥९५॥

प्यास या लोभ का कोई अन्त नहीं है। संतोष में ही परम सुख है। इस लिए पण्डित संतोष को बहुत महत्व देते हैं ।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः, स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु चैव न कर्तव्यो, दाने तपसि पाठने ॥९६॥

अपनी पत्नी, भोजन और धन से संतोष करना चाहिये। दान, तपस्या और अध्ययन में संतोष नहीं करना चाहिए ।

सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम् ।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतैव भूः ॥९७॥

जिसका मन संतुष्ट है, सभी सम्पत्तियां उसकी हैं। उन्हें देख कर वह हाय हाय नहीं करता। जिसने पैरों में जूता पहना हुआ है, उसके लिये तो सारी पृथ्वी ही चमड़े से ढकी हुई है।

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति, पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः ।
न पापफलमिच्छन्ति, पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥९८॥

मनुष्य पुण्य का फल तो चाहते हैं पर पुण्य करना नहीं चाहते। दूसरी ओर मनुष्य पाप का फल तो नहीं चाहते, पाप करते रहते हैं।

●●●

तृष्णा

अङ्गं गलित पलित मुण्ड दशनविहीनं जात तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ॥९९॥

शरीर के अंग गल गये हैं, सिर के बाल सफेद हो गये हैं, बूढ़ा दण्ड लेकर चलता है, तथापि आशा और तृष्णा को नहीं छोड़ता।

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ॥१००॥

दिन रात, सायं प्रातः, शिशिर और वसन्त ऋतु जाकर फिर २ आ जाते हैं। समय गुजरने के साथ साथ आयु भी बीतती जाती है, किन्तु आशा और तृष्णा नहीं छूटते।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः
तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥१०१॥

संसार के भोग समाप्त नहीं हुए, हम ही समाप्त हो गये। तपस्या नहीं की, हम ही तप गये। समय नहीं समाप्त हुआ, हम ही गुजर गये। तृष्णा कम नहीं हुई, हम ही जराजीर्ण हो गये। ●●●

उद्योग

योजनानां सहस्रं तु शनैर्गच्छेत्पिपीलिका ।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ॥१०२॥

चिऊंटी जैसा तुच्छ प्राणी चलते चलते कई हजार मील चल लेता है। गरुड़ परिश्रम न करने पर एक कदम भी नहीं चलता।

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः
दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥१०३॥

उद्योगी पुरुषसिंह को लक्ष्मी प्राप्त होती है। कायर लोग दैव दैव चिल्लाते रहते हैं। दैव को दबाकर तू आत्मशक्ति से पौरुष कर। यत्न करने पर भी यदि सफलता नहीं मिलती, तो कोई दोष नहीं।

को हि भारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥१०४॥

समर्थ लोगों के लिए कुछ भी भारी नहीं, परिश्रमी लोगों के लिए कुछ भी दूर नहीं, विद्वान लोगों के लिए कोई स्थान विदेश नहीं, और प्रिय-वादियों के लिए कोई पराया नहीं।

न कश्चिदपि जानाति किं कस्य श्वो भविष्यति ।
अतः श्वः करणीयानि कुर्यादद्य व बुद्धिमान् ॥१०५॥

यह कोई नहीं जानता कि कल किसका क्या होगा। इसलिए बुद्धिमान कल के काम को आज ही कर ले।

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सिंहस्य सुप्तस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥१०६॥

उद्योग से ही कार्य सफल होते हैं, मनोरथों से नहीं। सोये हुये शेर के मुख में कभी हिरण स्वयं नहीं घुस पड़ते।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः सहस्रगुणितैरपि हन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति ॥१०७॥

विघ्न के भय से नीच लोग किसी काम को प्रारम्भ ही नहीं करते। मध्यम श्रेणी के लोग विघ्न पड़ने पर काम को बीच में ही छोड़ देते हैं। उत्तम गुणों वाले हज़ारों विघ्नों से सताये जाने पर भी किसी काम को शुरू करके बीच में नहीं छोड़ते।

पाण्डवानां हृतं राज्यं धार्तराष्ट्रैर्महाबलैः।
पुनः प्रत्याहृतं चैव न दैवाद् भुजसंश्रयात् ॥१०८॥

शक्तिशाली कौरवों ने पाण्डवों का जो राज्य छीन लिया था, वह राज्य पाण्डवों ने भाग्य के भरोसे नहीं, अपनी भुजाओं के बल से फिर वापस ले लिया। ● ● ●

दान-महिमा

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥१०९॥

सम्पन्न होते हुए भी क्षमा करने वाला प्रभु और दरिद्र होते हुए दान देने वाला—ये दोनों पुरुष स्वर्ग में रहते हैं, बहुत ऊंचे उठ जाते हैं।

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रञ्चातपस्विनम् ॥११०॥

धनी होने पर दान न देने वाला और दरिद्र होने पर तपस्या न करने वाले इन दोनों को गले में पत्थर बाँध कर समुद्र में डुबो देना चाहिए।

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥१११॥

धन की तीन गतियाँ होती हैं— दान, उपभोग या नाश। जो न धन का दान करता है, न उसका उपभोग करता है, उसकी तीसरी गति अर्थात् नाश होती है।

दानेन पाणिर्न तु कंकणेन
स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन।
मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन
ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मुंडनेन ॥११२॥

हाथ की शोभा दान से होती है, कंकण पहनने से नहीं। शरीर की शुद्धि चन्दन से नहीं, स्नान से होती है। सज्जनों की तृप्ति सम्मान से होती है, भोजन से नहीं। मुक्ति ज्ञान से होती है सिर मुंडाने से नहीं।

●●●

विविध सुभाषित

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥११३॥

पानी से शरीर के अंग शुद्ध होते हैं। सत्य से मन, विद्या व तप से आत्मा तथा ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ॥११४॥

वयोवृद्ध गुरुजनों के प्रति अभिवादनशील और उनकी नित्य सेवा करने वाले की चार चीजें बढ़ती हैं :—आयु, विद्या, यश और बल।

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ।।११५।।

कल का काम आज और आज का काम प्रातःकाल ही कर ले। मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि इस पुरुष ने अपना काम पूरा कर लिया है या नहीं।

नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति सज्जना जनाः ।
शुष्कवृक्षाश्च मूर्खाश्च न नमन्ति कदाचन ।।११६।।

फल वाले वृक्ष झुक जाते हैं, सज्जन आदमी भी नम्र होते हैं। सूखे वृक्ष और मूर्ख कभी नहीं झुकते।

एषा स्वर्णमयी लंका सौमित्रे मे न रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।।११७।।

श्री रामचन्द्र लक्ष्मण को कहते हैं—हे लक्ष्मण, सोने की यह लंका भी अच्छी नहीं लगती। अपनी जननी और अपनी मातृभूमि स्वर्ग से भी अधिक प्रिय होती है।

चिंता चितासमा ह्युक्ता बिन्दुमात्रविशेषिता ।
सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता ।।११८।।

चिन्ता और चिता में केवल एक बिन्दु का अन्तर है। चिता निर्जीव को जलाती है, चिन्ता जीवित प्राणी को ही जला देती है।

मान्धाता च महीपतिः कृतयुगालंकारभूतो गतः,
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वाऽसौ दशास्यांतकः ।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते,
नैकेनापि समं गता वसुमती नूनं त्वया यास्यति ।।११९।।

राजकुमार भोज अपनी हत्या कराने वाले चाचा को संदेश देता है—सतयुग का प्रतापी राजा मान्धाता मर गया। समुद्र पर सेतु

बाँधने और रावण को मारने वाला राम भी आज कहाँ है ? युधिष्ठिर आदि राजा भी स्वर्ग को चले गये। किसी के साथ यह राज्य, यह भूमि नहीं गई। तेरे साथ अवश्य जायगी।

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढ़ैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥१२०॥

मूर्ख लोग पत्थर के टुकड़ों को ही रत्न कहते हैं, किन्तु पृथ्वी पर सच्चे रत्न तीन ही हैं—पानी, अन्न और सुन्दर उक्ति।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥१२१॥

पराधीनता में सब कुछ दुख है, स्वाधीनता में सब कुछ सुख है। सुखदुख का संक्षेप में यही लक्षण जानना चाहिए।

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥१२२॥

कर्ण कहता है—मैं सूत हूँ या सूत-पुत्र, जो कोई भी होऊँ, कुल में जन्म तो दैवाधीन है, मेरे अधीन तो अपना पौरुष है।

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥१२३॥

गौरव की दृष्टि से दस उपाध्यायों के बराबर एक आचार्य होता है। सौ आचार्यों के बराबर एक पिता और एक हजार पिताओं के बराबर एक माता होती है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥१२४॥

जहां नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। जहां इनकी पूजा नहीं होती, वहां कोई काम सफल नहीं होता।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ॥१२५॥

विद्वान और शिक्षित दुष्ट को छोड़ देना चाहिए । मणि से भूषित सांप हो, तो क्या वह भयंकर नहीं होता ?

अहो खलभुजंगस्य विपरीतो वधक्रमः ।
कर्णे लगति चैकस्य प्राणैरन्यो वियुज्यते ॥१२६॥

दुष्ट और सर्प दूसरों का वध अलग अलग तरीकों से करते हैं । साँप जिसको काटता है, वही मरता है । दुष्ट एक के कान को भरता है, दूसरा मारा जाता है ।

मृत्योर्बिभेषि किं बाल न स भीतं विमुञ्चति ।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनाँ ध्रुवः ॥१२७॥

हे मूर्ख, मृत्यु से क्यों डरते हो, यह तो भयभीत को भी नहीं छोड़ती । आज मरे या सौ साल बाद, प्राणियों की मृत्यु निश्चित है ।

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ।
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥१२८॥

हर एक पहाड़ पर माणिक नहीं मिलते और न हर एक हाथी में मोती मिलते हैं । प्रत्येक वन में भी चन्दन नहीं होता । इसी तरह साधु भी सर्वत्र नहीं मिलते ।

आपत्काले तु संप्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत् ।
वृद्धिकाले तु संप्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद्भवेत् ॥१२९॥

मित्र वही है, जो आपत्ति आने पर भी मित्र रहे । सुख समृद्धि होने पर तो दुर्जन भी मित्र बन जाता है ।

जीवन्तोऽपि मृताः पञ्च श्रूयन्ते किल भारते ।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः ॥१३०॥

दरिद्र, रोगी, मूर्ख, प्रवासी और सदा गुलामी करने वाला—ये पांचों जीवित रहते हुए भी मरे हुए के समान हैं।

मृगाः मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति
गावश्च गोभिस्तुरगास्तुरंगैः ।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः
समानशीलव्यसनेषु सख्यम् ॥१३१॥

मृग मृगों के साथ, गाएं गौओं के साथ, घोड़े घोड़ों के साथ मूर्ख मूर्खों के साथ और बुद्धिमान् बुद्धिमानों के साथ रहते व चलते हैं। समान स्वभाव और समान रुचि वालों में ही मित्रता होती है।

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ च नातोऽधिकम् ।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ॥१३२॥

विधाता ने अपने मस्तक पर थोड़ा या बहुत जो धन लिख दिया, वह मरुस्थल में भी प्राप्त हो जाता है। सुमेरु पर्वत पर उससे अधिक प्राप्त नहीं होता। इसलिए धनियों के सम्बन्ध में धीरज रख। लालच भरी नज़र से उन्हें मत देख। देखो, घड़ा चाहे कुएं में डालो या समुद्र में, बराबर ही पानी लाता है।

तानीन्द्रियाण्यविकलानि मनस्तदेव
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
ह्यन्यो क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥१३३॥

वही संपूर्ण अक्षत इन्द्रियां हैं, मन भी वही है, बुद्धि और वाणी में भी कोई फर्क नहीं पड़ा। सिर्फ पैसे की गरमी नहीं रही (गरीब हो

गया), इसीलिए आज एक क्षण में वह बदल गया, उसे कोई नहीं पूछता। यह बड़ा भारी आश्चर्य है।

वरमसिधारा तरुतलवासो
वरमिह भिक्षा वरमुपवासः।
वरमपि घोरे नरके पतनं
न च धनगर्वितबान्धवशरणम् ॥१३४॥

तलवार की तेज़ धारा के नीचे सिर देना अच्छा है, वृक्ष के नीचे रहना, भीख मांगना, उपवास करना और घोर नरक में वास अच्छा है, किन्तु धन से घमण्डी सम्बन्धी के पास शरण लेना अच्छा नहीं है।

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः
कृतप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति ॥१३५॥

जिसकी कोई भी रक्षा न कर रहा हो, वह भी भगवान द्वारा रक्षा करने पर बच जाता है। सब तरह से रक्षित होकर यदि भाग्य ही मारे, तो नष्ट हो जाता है। जंगल में छोड़ा हुआ अनाथ भी जीवित रहता है। घर में सब प्रयत्न करके भी बचने नहीं पाता।

रामस्य व्रजनं बलेर्नियमनं पाण्डोःसुतानां वनं
वृष्णीनां निधनं नलस्य नृपतेः राज्यात्परिभ्रंशनम्।
नाट्याचार्यकमर्जुनस्य पतनं संचिन्त्य लङ्केश्वरे
सर्वं कालवशाज्जनोऽत्र सहते कः कं परित्रायते ॥१३६॥

राम का वनवास, बलि का बन्धन, पाण्डवों का वनवास, वृष्णियों का विनाश, राजा नल का राज्य से निकलना, अर्जुन जैसे वीर का नृत्य

संगीत, लंकेश्वर रावण का पतन, यह सब कालवश मनुष्य को सहन करना पड़ता है। कौन किसकी रक्षा करता है ?

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
धराधरो वर्षति नात्महेतोः
परोपकाराय सतां विभूतयः ।।१३७।।

नदियां स्वयं पानी नहीं पीतीं, वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते, मेघ स्वयं अपने लिए नहीं बरसता। सज्जनों का सब कुछ दूसरों के उपकार के लिए होता है।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति।। १३८।।

जिस आदमी में अपनी समझदारी नहीं है, उसे पुस्तकों से भी कुछ शिक्षा नहीं मिलती। आँखों से रहित मनुष्य को दर्पण से क्या लाभ ?

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नाऽवसीदति ।।१३९।।

शरीर में स्थित आलस्य मनुष्यों का प्रधान शत्रु है। उद्योग के समान कोई बन्धु नहीं है, जिसे करके मनुष्य दुःख नहीं पाता।

क्षारं जलं वारिमुचः पिबन्ति
तदेव कृत्वा मधुरं वमन्ति ।।
सन्तस्तथा दुर्जनदुर्वचांसि ,
पीत्वा च सूक्तानि समुद्गिरन्ति ।।१४०।।

बादल समुद्रों का खारी पानी पीते हैं, किन्तु उसे मधुर बना कर वर्षा कर देते हैं। इसी तरह सज्जन लोग दुर्जनों के दुर्वचन सुनकर भी सुन्दर सुभाषित ही मुख से निकालते हैं।

●●●

धर्मराज युधिष्ठिर की शिक्षा*

माता गुरुतरा भूमेः, खात् पितोच्चतरस्तथा ।
मनः शीघ्रतरं वातात्, चिन्ता बहुतरी तृणात् ।।१४१।।

मां पृथ्वी से भी अधिक भारी (गौरवमय) है, पिता आकाश से ऊँचा है। मन वायु से भी वेगवान है, चिन्ता दूर्वा घास से भी अधिक फैलने वाली होती है।

मानं हित्वा प्रियो भवति, क्रोधं हित्वा न शोचति ।
कामं हित्वाऽर्थवान् भवति, लोभं हित्वा सुखी भवेत् ।।१४२।।

अपने घमण्ड को छोड़ने से मनुष्य सबका प्रेमपात्र होता है, क्रोध छोड़ कर कोई पछताता नहीं। कामवासना को छोड़ने से अर्थ को और लोभ छोड़ने से सुख को ही ह्+र प्राप्त करता है।

तपः स्वधर्मवर्तित्वं मनसो दमनं दमः ।
क्षमा द्वन्द्वसहिष्णुत्वं, ह्रीरकार्यनिवर्तनम् ।।१४३।।

अपने धर्म कर्त्तव्य में निष्ठा ही तप हैं, मन की इच्छाओं का दमन ही दम है। सुख-दुख, सरदी-गरमी, जय-पराजय आदि द्वन्द्वों को सहन करना ही क्षमा है, बुरे कार्यों से अलग रहना ही लज्जा है।

स्वधर्मे स्थिरता स्थैर्यं, धैर्यमिन्द्रियनिग्रहः ।
स्नानं मनोमलत्यागो, दानं वै भूतरक्षणम् ।।१४४।।

अपने धर्म-पालन में दृढ़ रहना स्थिरता है, इन्द्रियों के निग्रह में ही धैर्य है। मन के मैल का त्याग स्नान और दान देना ही प्राणियों की रक्षा है।

विद्यमाने धने लोभाद्, दानभोगविवर्जितः ।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्, सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ।।१४५।।

---

* महाभारत के वन पर्व में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद से

धन होने पर भी लोभवश जो न दान करता है, न भोगता है और मांगने पर मेरे पास नहीं है कहता है, वह चिरकाल के लिए नरक का भागी होता है।

अहन्यहनि भूतानि, गच्छन्तीह यमालयम् ।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति, किमाश्चर्यमतः परम् ॥१४६॥

प्रतिदिन ही मनुष्य मरते रहते हैं, यह देख कर भी बचे हुए मनुष्य अमरता चाहते हैं, इससे बड़े आश्चर्य की क्या बात है ? ●●●

व्यवहार नीति

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिवेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥१४७॥

आंख से नीचे देखकर अपना कदम रखे, वस्त्र से पवित्र (छानकर) जल पिये, सत्य से पवित्र वाणी बोले और मननपूर्वक आचरण करे।

भद्रं कृतं धृतं मौनं कोकिलैर्जलदागमे ।
दर्दुरा यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि संमतम् ॥१४८॥

जहां मेंढकों की तरह से बहुतसे बकवादी वक्ता हों, वहां मौन धारण ही अच्छा है। वर्षा ऋतु में मेंढकों के टर्र-टर्र करने पर कोयल मौन धारण ही कर लेती है।

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम् ।
भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम् ॥१४९॥

कुपच में जल दवा है, स्वास्थ्य ठीक होने पर शक्तिदायक है। भोजन के समय जल अमृत, किन्तु भोजन के पश्चात् विष का प्रभाव दिखाता है।

काले भुञ्जीत मधुरं स्निग्धं पथ्यं हितं मितम् ।
काले ब्रवीत मधुरं प्रियं तथ्यं हितं मितम् ॥१५०॥

भोजन अपने समय पर किया जाए। स्निग्ध हो, वह हितकारी हो और परिमित हो। इसी तरह वचन भी समय पर बोला जाए और वह भी मधुर, प्रिय, परिमित, सत्य तथा हितकर हो।

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ।
छिद्यन्ते सरलस्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥१५१॥

मनुष्य को बहुत सरल बन कर नहीं रहना चाहिए। वन में भी सीधे वृक्षों को ही काटा जाता है, तिरछे खड़े रह जाते हैं।

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च ।
आहारे च व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥१५२॥

धन और अन्न के व्यापार में विद्या प्राप्त करने में तथा आहार और व्यवहार में जो लज्जा का त्याग करता है, वही सुखी रहता है।

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥१५३॥

धनवान, वेदों का ज्ञाता, राजा, या अधिकारी, नदी और वैद्य जहाँ न हों, वहाँ एक दिन भी निवास नहीं करना चाहिए।

उद्योगे नास्ति दारिद्रयं जपतो नास्ति पातकम् ।
मौनेन कलहो नास्ति जागरिते कुतो भयम् ॥१५४॥

परिश्रम करने से निर्धनता, जप करने से पाप, मौन रहने से झगड़ा और जागते रहने से भय पास नहीं आते।

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः ।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ॥१५५॥

न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु है। व्यवहार से ही मित्र तथा शत्रु उत्पन्न हो जाते हैं।

ऋणशेषश्चाग्निशेषः शत्रुशेषस्तथैव च।
पुनः पुनः प्रवर्तन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत् ॥१५६॥

ऋण, अग्नि और शत्रु तीनों को समूल नष्ट कर देना चाहिए अन्यथा बार बार पैदा हो कर कष्ट प्रदान करते हैं।

भोजनान्ते पिबेत् तक्रं वासरान्ते पयः पिबेत्।
निशान्ते च पिबेद्वारि त्रिभिः रोगो न जायते ॥१५७॥

प्राचीन आयुर्वेद के सिद्धान्त के अनुसार स्वस्थ रहने के लिए भोजन के बाद तक्र (मट्ठा) का पान करे, सायंकाल भोजनोपरान्त दूध पिये और प्रातःकाल शौच जाने से पूर्व पानी पिये।

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद् वृन्दमवसीदति ॥१५८॥

जिस समाज में बहुत से नेता हों और सभी अपने को बड़ा पण्डित मानते हों, सभी उन्नति व सम्मान के इच्छुक हों, वह समाज नष्ट हो जाता है।

कः कालः कानि मित्राणि, को देशः, को व्ययागमौ।
कश्चाहं, का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥१५९॥

निम्नलिखित प्रश्नों पर बार-बार विचार करना चाहिए—कौन सा समय है, कौन कौन मित्र है ? कौनसा देश है ? आमदनी कितनी और खर्च कितना है ? मैं कौन हूँ और मेरी शक्ति क्या है ?

खादन्न गच्छामि, हसन्न जल्पे, गतं न शोचामि कृतं न मन्ये।
द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्, किं कारणं, भोज भवामि मूर्खः ॥१६०

हे राजा भोज, मैं कैसे मूर्ख हूँ। चलते हुए खाता नहीं, हँसता

हुआ बकवास नहीं करता, बोते हुए का मोह नहीं करता, दो से तीसरा नहीं होता (दो की बातचीत में दखल नहीं देता)। फिर मूर्ख कैसे हूँ।

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥१६१॥

सज्जनों के घर में अतिथियों के सत्कार के लिए कुशा का आसन, बैठने का स्थान, जल तथा मीठे बोल कभी समाप्त नहीं होते।

आदानस्य प्रदानस्य कर्त्तव्यस्य च कर्मणः।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम् ॥१६२॥

लेन देन, और करने योग्य काम यदि ठीक समय पर जल्दी न कर लिये जावें, तो देरी करने से उसका आनन्द नष्ट हो जाता है।

दरिद्रता धीरतया विराजते, कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते।
कदन्नता चोष्णतया विराजते, कुरूपता शीलतया विराजते ॥१६३॥

धैर्य रखने से निर्धनता, साफ धुले होने पर घटिया वस्त्र, और गर्म करने से निकृष्ट भोजन भी अच्छे लगने लगते हैं। कुरूप व्यक्ति भी सुशील हो तो वह भी भला लगने लगता है।

अर्थनाशं मनस्तापं गृहदुश्चरितानि च।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१६४॥

व्यवहारकुशल बुद्धिमान् मनुष्य को कभी अपनी आर्थिक हानि, अपनी मानसिक व्यथा, घर के किसी सदस्य की दुश्चरितचर्चा, अपना हार जाना और अपना अपमान किसी को नहीं बताना चाहिए।

अयमेव परो धर्मः इयमेव कुलीनता।
इदमेव हि पाण्डित्यमायात् स्वल्पतरो व्ययः ॥१६५॥

अपना खर्च सदा अपनी आय से कम रखना चाहिए। यही परम-धर्म है और इसी में कुलीनता एवं पाण्डित्य है।

दिवा निरीक्ष्य वक्तव्यं रात्रौ नैव च नैव च।
विचरन्ति महाधूर्ताः वटे वररुचिर्यथा ॥१६६॥

दिन में भी सोच समझकर, इधर उधर शत्रु मित्र देखकर बातचीत करनी चाहिए। रात को कभी बातचीत न करनी चाहिए, क्योंकि न जाने कौन धूर्त इधर उधर छिपे हुए हों।

वासः प्रधानः खलु योग्यताया वासोविहीनं विजहाति लक्ष्मीः।
पीताम्बरं वीक्ष्य ददौ तनूजां, दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः ॥१६७॥

उजले साफ वस्त्र धारण करने से निश्चय ही व्यक्ति की योग्यता प्रकट होती है और वस्त्रविहीन गंवार लक्ष्मी गँवा देता है। पीताम्बर धारण किए हुए देख कर विष्णु को समुद्र ने अपनी पुत्री दे दी और नग्न शरीर देख कर शिव को विष दे दिया।

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्यन्येन पण्डितः।
न परीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ॥१६८॥

पण्डित एक पैर तब तक नहीं उठाता, जब तक दूसरा पैर आगे स्थिर न कर ले। आगे के स्थान की परीक्षा किये बिना अपना पहला स्थान न छोड़ो।

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम्।
नीचादप्युत्तमाँ विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥१६९॥

विष में से अमृत को, अशुद्ध पदार्थ में से सोने को, नीच से भी विद्या को और छोटे कुल से सुन्दर गुणवती सुशील स्त्री को ले लेना चाहिए। इसमें संकोच न करे।

लालयेत्पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥१७०॥

पुत्र के साथ पाँच वर्ष तक प्यार का बर्ताव करे। दस वर्ष तक आवश्यकतानुसार ताड़ना दे। और जब पुत्र सोलह वर्ष का हो, तब उससे समानता का बर्ताव करना उचित है।

आलस्योपगता विद्या परहस्ते गतं धनम्।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं हतसैन्यमनायकम्॥१७१॥

आलस्य से विद्या नष्ट हो जाती है। दूसरे के हाथ जाने से धन निरर्थक हो जाता है। बीज की न्यूनता से खेत बेकाम हो जाता है। सेनापति के बिना सेना मारी जाती है।

नास्ति मेघसमं तोयं नास्ति चात्मसमं बलम्।
नास्ति चक्षुःसमं तेजो नास्ति धान्यसमं प्रियम्॥१७२॥

वर्षा जल के समान अन्य जल नहीं हो सकता। अपनी ताकत के समान कोई बल नहीं होता। समय पड़ने पर अपना ही बल काम देता है। आँखों के प्रकाश के बराबर कोई दूसरा प्रकाश नहीं है और अन्न के समान अन्य पदार्थ प्रिय नहीं है।

हस्ती हस्तसहस्रेण शतहस्तेन वाजिनः।
शृङ्गिणो दशहस्तेन देशत्यागेन दुर्जनः॥१७३॥

हाथी से बचने के लिए हजार हाथ, घोड़े से सौ हाथ, सींग वाले पशु से दस हाथ दूर रहना चाहिए, परन्तु दुर्जनों से बचने के लिए देश-त्याग तक कर देना चाहिए।

नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत्।
न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे॥१७४॥

एक वस्त्र पहन कर भोजन न करे, नग्न होकर स्नान न करे, मार्ग में राख या गौओं के रहने के स्थान पर मूत्र न करे।

नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवाध्यशनं कुर्यान्न नोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्॥१७५॥

किसी को उच्छिष्ट भोजन न दे। दिन और साँयकाल के भोजनों के बीच में भोजन न करे। अधिक भोजन न करे। और जूठे मुख कहीं न जावे।

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥१७६॥

सब शुद्धियों में अर्थ की शुद्धि श्रेष्ठ है। जो रुपये पैसे के बारे में ईमानदारी और सफाई रखता है, वही वस्तुतः पवित्र है। मिट्टी पानी द्वारा पवित्रता वास्तविक पवित्रता नहीं है। ●●●

विविध लोकोक्तियाँ

(१) **संघे शक्तिः कलौ युगे।**
कलियुग में शक्ति संगठन में होती है।

(२) **सर्वः स्वार्थं समीहते।**
सभी अपना-अपना स्वार्थ चाहते हैं।

(३) **मनोरथानामगतिर्न विद्यते।**
मनोरथों की कोई सीमा नहीं होती।

(४) **अहिंसा परमो धर्मः।**
अहिंसा ही परम धर्म है।

(५) **भिन्नरुचिर्हि लोकः।**
हर एक मनुष्य की रुचि अलग-अलग होती है।

(६) **आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया।**
गुरुओं की आज्ञा बिना बहस के मान लेनी चाहिये।

(७) न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।

रत्न स्वयं किसी को नहीं ढूंढता, उसे ही तलाश किया जाता है ।

(८) हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

हितकारी और मनोहर वचन दुर्लभ होते हैं ।

(९) अत्यादरः शंकनीयः ।

बिना विशेष कारण के जहां बहुत आदर होने लगे, समझ लो दाल में काला है ।

(१०) निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ।

अंधों में काणा भी राजा होता है ।

(११) मौनं सर्वार्थसाधनम् ।

मौन से सब कामों की सिद्धि होती है ।

(१२) जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।

जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बड़ी है ।

(१२) कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ।

कमजोर का कोई मित्र नहीं होता ।

(१४) सत्यमेव जयते नानृतम् ।

सत्य की जीत होती है, असत्य की नहीं ।

(१५) अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ।

महात्मा एक बार दिये गये वचन को अवश्य पूर्ण करते हैं ।

(१४) शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम् ।

स्वस्थ शरीर धर्म का प्रथम महत्वपूर्ण साधन होता है ।

(१५) न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ।

धर्मात्मा पुरुषों की उम्र नहीं देखी जाती ।

(१६) स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला ।

बहुत लालची सदा दरिद्र रहता है ।

(१७) विनाशकाले तु विपरीतबुद्धि :

विनाश का समय आने पर बुद्धि भी उलटी हो जाती है ।

(१८) पुरुषकारमनुवर्तते दैवम् ।

भाग्य पुरुषार्थ का अनुसरण करता है ।

(१९) न दैवप्रमाणानां कार्यसिद्धिः ।

जो भाग्य पर निर्भर रहते हैं, उनका काम सिद्ध नहीं होता ।

(२०) जिह्वायत्तौ वृद्धि विनाशौ ।

मनुष्य की वृद्धि और विनाश मीठी या कड़वी जिह्वा के अधीन होते हैं ।

(२१) बहुभाषिणो न श्रद्दधाति लोकः ।

जो बहुत बोलता है, लोग उसका विश्वास नहीं करते ।

(२२) यद्भविष्यो विनश्यति ।

भविष्य की चिन्ता न करने वाला नष्ट हो जाता है ।

क्षमा प्रार्थना

बहुत ध्यान से प्रूफ देखने पर भी प्रेस में मशीन पर ` ँ ॅ की मात्राएं कहीं-कहीं टूट गई हैं। इस विवशता के लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं ।

—प्रकाशक

दो राष्ट्रगीत

वन्दे मातरम्

सुजलाम् सुफलाम् मलयजशीतलाम्
शस्यश्यामलाम् मातरम्।
वन्दे मातरम्
शुभ्रज्योत्स्नापुलकितयामिनीम्
फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीम्
सुहासिनीम् सुमधुरभाषिणीम्
सुखदाम् वरदाम् मातरम्!
वन्दे मातरम् ॥

—: ० :—

जन गण मन

जन-गण-मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य-विधाता
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल बंगा
विंध्यहिमाचल यमुना गंगा उच्छल जलधि-तरंगा
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिश मांगे
गाये तव जयगाथा
जनगण-मंगलदायक जय हे भारत भाग्य-विधाता
जय हे! जय हे! जय हे! जय जय जय जय हे!
भारत-भाग्य-विधाता।